8

सत्यमेव जयते

भारतीय संसद
राज्य सभा

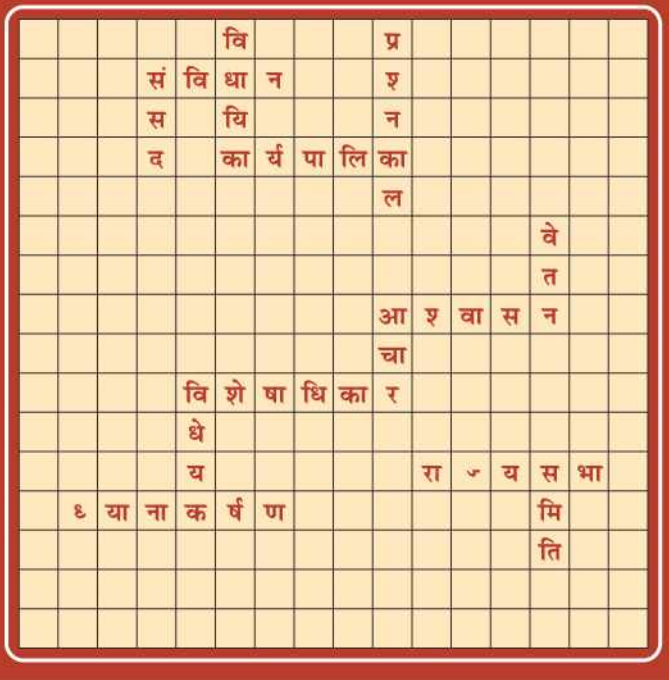

कार्यपालिका – संसद के प्रति इसका उत्तरदायित्व

भारतीय संसद, राज्य सभा
PARLIAMENT OF INDIA, RAJYA SABHA

8

सत्यमेव जयते

भारतीय संसद
राज्य सभा

कार्यपालिका–संसद के प्रति इसका उत्तरदायित्व

भारतीय संसद, राज्य सभा
PARLIAMENT OF INDIA, RAJYA SABHA

© राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली

वेबसाइट : http://parliamentofindia.nic.in
: http://rajyasabha.nic.in

ई-मेल : rsrlib@sansad.nic.in

आमुख

यह पुस्तिका राज्य सभा के नव-निर्वाचित सदस्यों की सुविधा के लिए प्रकाशित की गई पुस्तिकाओं की शृंखला का एक भाग है। इसमें संसद और कार्यपालिका के बीच संबंध के विभिन्न पहलुओं से संबंधित संक्षिप्त सूचना निहित है। सम्पूर्ण सूचना के लिए मूल स्रोतों का सन्दर्भ लिया जा सकता है।

इस पुस्तिका का प्रयोजन तत्काल सन्दर्भ के लिए एक सुविधाजनक मार्गदर्शिका उपलब्ध करवाना है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तिका सदस्यों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

नई दिल्ली
जुलाई, 2018

देश दीपक वर्मा
महासचिव

विषय-सूची

पृष्ठ

1. संसद और कार्यपालिका के बीच संबंध 1–14

2. उपाबंध 15–17

3. चुनिंदा संदर्भ-ग्रंथ सूची 18–19

संसद और कार्यपालिका के बीच संबंध

सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय, जिसकी ओर संविधान के निर्माताओं का ध्यान गया था, वह था — कार्यपालिका का स्वरूप और विधानमंडल के साथ उसका संबंध। संविधान के प्रारूप को प्रस्तुत करते समय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था:

> यदि संवैधानिक कानून के किसी विद्यार्थी के हाथों में किसी संविधान की प्रति दे दी जाए तो वह निश्चय ही दो प्रश्न पूछेगा। पहला यह कि इस संविधान में सरकार के किस स्वरूप की परिकल्पना की गई है; और दूसरा यह कि संविधान का स्वरूप क्या है? इसका कारण यह है कि ये दो ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जिनकी चर्चा प्रत्येक संविधान में अवश्य होती है।[1]

भारत में सरकार का स्वरूप क्या हो, इस बारे में संविधान सभा के निर्णय काफी हद तक भारत की राजनैतिक पृष्ठभूमि और ब्रिटिश राज के दौरान बनी प्रथाओं और परम्पराओं से प्रभावित थे।[2] इसलिए इस बात में कोई आश्चर्य नहीं है कि नए संविधान के सिद्धांतों के सम्बन्ध में हुई चर्चाओं में प्रारम्भिक चरणों में ही बहुमत की राय इस पक्ष में थी कि भारत के लिए ब्रिटिश परम्परा के अनुरूप एक ऐसी कार्यपालिका बनाई जाए जो विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी हो। 4 नवम्बर, 1948 को संविधान सभा में संविधान के प्रारूप को प्रस्तुत करते समय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कार्यपालिका की सामान्य प्रकृति के बारे में विस्तारपूर्ण तथा प्राधिकारिक वक्तव्य दिया था। उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ कहा था:

> संसदीय प्रणाली इस रूप में गैर-संसदीय प्रणाली से भिन्न है कि पहली प्रणाली दूसरी प्रणाली की अपेक्षा अधिक जिम्मेदार है बल्कि उसके

[1] कांस्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, खण्ड-7, पृष्ठ 31-32

[2] बी. शिवा राव, फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन : ए स्टडी, 1968, पृष्ठ 334

उत्तरदायित्वों के आकलन के समय तथा आकलन करने वाले अभिकरण के मामले में भी दोनों में भिन्नता है। गैर-संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत, जैसाकि संयुक्त राज्य अमरीका में विद्यमान है; कार्यपालिका के दायित्वों का आकलन आवधिक होता है। यह आकलन दो वर्षों में एक बार किया जाता है और यह निर्वाचक-मंडल द्वारा किया जाता है। ब्रिटेन में जहां संसदीय प्रणाली है, कार्यपालिका के दायित्व का आकलन दैनिक भी होता है और आवधिक भी। इसका दैनिक आकलन सांसदों द्वारा प्रश्नों, संकल्पों, अविश्वास प्रस्तावों, स्थगन प्रस्तावों तथा अभिभाषणों पर वाद-विवादों के माध्यम से किया जाता है। आवधिक आकलन निर्वाचक-मंडल द्वारा निर्वाचन के समय किया जाता है। निर्वाचन हर पांच वर्ष पर अथवा इससे पूर्व भी हो सकता है। ऐसा महसूस किया जाता है कि दायित्व का दैनिक आकलन, जो कि अमरीकी प्रणाली में उपलब्ध नहीं है, आवधिक आकलन से कहीं अधिक प्रभावी है और भारत जैसे देश के लिए कहीं अधिक आवश्यक भी। संविधान के प्रारूप में कार्यपालिका की संसदीय प्रणाली की सिफारिश करते हुए अधिक स्थायित्व की बजाय अधिक दायित्व को प्राथमिकता दी गई है।[3]

इस बात को आगे बढ़ाते हुए भारत के संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों और अन्य संस्थाओं की स्थिति, उनकी शक्तियों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को विस्तार के साथ परिभाषित किया गया है।

भारत के संविधान में एक संसद का उपबंध किया गया है, जिसमें एक निर्वाचित राष्ट्रपति[4] तथा दो सदन—राज्य सभा और लोक सभा हैं।[5] राष्ट्रपति प्रधान मंत्री को नियुक्त करता है और उसकी सलाह पर, मंत्रिपरिषद् के अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है।[6] राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के दोनों सदनों की बैठक बुलाता

[3] कांस्टीट्यूएंट एसेम्बली डिबेट्स, खण्ड-7, पृष्ठ 32-33

[4] भारत का संविधान, अनुच्छेद 54

[5] अनुच्छेद 79

[6] अनुच्छेद 75(1) और 75(3)

है। वह दोनों सभाओं के सत्रों का अवसान कर सकता है और लोक सभा को भंग कर सकता है। दो सत्रों के बीच 6 महीने से अधिक का अंतराल नहीं होना चाहिए।[7] संसद के एक वर्ष में सामान्यत: तीन सत्र होते हैं: बजट सत्र (जनवरी–अप्रैल), वर्षाकालीन सत्र (जुलाई–अगस्त) और शीतकालीन सत्र (नवम्बर–दिसम्बर)। लोक सभा के प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् पहले सत्र और प्रत्येक वर्ष संसद के पहले सत्र का आरम्भ, एक साथ एकत्रित दोनों सदनों को राष्ट्रपति के अभिभाषण के साथ होता है।[8] संविधान के अधीन संसद के विधायी कार्यक्षेत्र और अन्य शक्तियों का प्रभाव क्षेत्र बहुत व्यापक है। संवैधानिक शक्ति भी संसद में ही निहित है और कहा जा सकता है कि जनता की सार्वभौमिक इच्छा केवल संसद में उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के सामूहिक निर्णयों के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है। इस पर भी भारतीय संसद न तो सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है और न सर्वोपरि।[9]

संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन[10], न्यायालय के विचार–योग्य मौलिक अधिकारों की एक संहिता को शामिल किए जाने,[11] न्यायिक समीक्षा के सामान्य उपाबंध और एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था के कारण संसद का प्राधिकार और अधिकार क्षेत्र सीमित हो जाता है। उच्चतम न्यायालय संसद द्वारा पारित किसी कानून को इस रूप में अकृत और शून्य घोषित कर सकता है कि उससे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है अथवा उससे संविधान के अन्य उपबंधों का उल्लंघन होता है।[12] फिर उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिर्णय के अनुसार, संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति की भी सीमाएं हैं क्योंकि वह संविधान की मौलिक विशेषताओं में परिवर्तन नहीं कर सकती।[13]

---

[7] अनुच्छेद 85

[8] अनुच्छेद 87

[9] अनुच्छेद 143 और दिल्ली लॉज एक्ट (1912) का मामला, एआईआर 1951, एससी, पृष्ठ 332

[10] अनुच्छेद 245–46 तथा सातवीं अनुसूची

[11] अनुच्छेद 12–35 तथा 226

[12] के.जे. थामस *बनाम* कमिश्नर ऑफ एग्रीकल्चरल इनकम टैक्स, मद्रास, एआईआर 1958, केरल, पृष्ठ 6

[13] केशवानन्द भारती *बनाम* स्टेट ऑफ केरल, एआईआर 1973, एससी 1461

परम्परागत रूप से 'विधायिका' और 'कार्यपालिका' शब्दों में क्रमशः 'ऐसा निकाय जो विधान कार्य करे अथवा कानून बनाए और ऐसा निकाय जो उन्हें कार्यान्वित करे' के अर्थ अभिप्रेत हैं। किन्तु, संसद का काम केवल कानून बनाना नहीं है। इसी प्रकार 'कार्यपालिका' शब्द भी आम तौर से कई भिन्न-भिन्न बातों के लिए प्रयोग किया जाता है। भारत के संविधान के अधीन राष्ट्रपति कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। कार्यपालिका की सभी शक्तियां उसमें निहित हैं और कार्यपालिका संबंधी सभी क्रियाकलाप उसके नाम से किए जाते हैं।[14] परन्तु वह केवल एक संवैधानिक राज्याध्यक्ष है जो मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह से कार्य करता/करती है और इसलिए वह केवल एक औपचारिक कार्यपालक है। वास्तविक और राजनैतिक कार्यपालिका वस्तुतः मंत्रिपरिषद् है।[15] इसके पश्चात् एक स्थायी प्रशासन होता है जिसमें सिविल सेवाएं, बड़ी संख्या में प्रशासक, विशेषज्ञ, तकनीकी-विद् तथा प्रशासन तंत्र के अन्य घटक शामिल हैं जो नीतियां तैयार करने और उनके क्रियान्वयन में मंत्रियों की सहायता करता है। अतः संसद और कार्यपालिका के संबंध के अन्तर्गत राजनैतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् के साथ संसद के संबंध और प्रशासन अर्थात् सिविल सेवाओं के साथ संसद के संबंध भी आ जाते हैं।

कार्यपालिका और विधायिका के आपसी संबंधों के प्रश्न की ओर ब्रिटेन और अन्य देशों के राजनैतिक विचारकों और संवैधानिक सिद्धांतकारों का ध्यान समान रूप से गया है। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश राजनैतिक प्रणाली में संसद की घटती हुई भूमिका और कार्यपालिका की बढ़ती हुई शक्ति के बारे में बहुत चर्चा हुई है। आलोचकों ने कभी-कभी विद्यमान प्रवृत्तियों की समीक्षा की है और ठोस उपाय सुझाने की कोशिश की है; बहुधा उन्होंने उस तथाकथित 'स्वर्ण युग' का जिक्र किया है जिसमें विधायिका तथा कार्यपालिका के बीच अधिक अच्छा संतुलन बना हुआ था। कुछ और लोग इस निराशावादी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस स्थिति में परिवर्तन करने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता है।[16] कार्यपालिका की तुलना में संसद के कार्यों के बारे में मोटे तौर

[14] अनुच्छेद 52-53 तथा 77

[15] अनुच्छेद 74 तथा 78, साथ ही *देखिए* राय साहिब राम जवाया कपूर *बनाम* स्टेट ऑफ पंजाब, एआईआर 1955, एससी, पृष्ठ 549

[16] एच.वी. वाइजमैन, पार्लियामेंट एंड दि एक्जीक्यूटिव, 1966, पृष्ठ xiii

पर दो मत प्रचलित हैं। पहले का संबंध संसदीय प्रभुसत्ता, मंत्रियों के उत्तरदायित्व और संसदीय निगरानी से है, दूसरे का संबंध सरकार के उत्तरदायित्व, लोक सेवकों के काम में राजनीतिक हस्तक्षेप के खतरे और नियंत्रण के बजाय वाद-विवाद के महत्व से है।[17] हॉल्सबरी की पुस्तक 'लॉज ऑफ इंग्लैंड' में कार्यपालिका-विधायिका संबंधों का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया गया है:

> संसद कार्यपालक प्राधिकारी तो नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह सम्राट और कार्यपालक सरकार के कार्यों तथा स्वयं द्वारा बनाए गए कानूनों के क्रियान्वयन पर प्रभावी नियंत्रण रखती है।
>
> यह नियंत्रण विभिन्न प्रकार से रखा जाता है, अर्थात्:
>
> 1. ऐसे कानूनी प्रतिबन्धों के माध्यम से जो संसद की अनुमति के बिना सम्राट या उसके मंत्रियों को लोगों पर कोई प्रभार लगाने या शान्ति के समय में किसी स्थायी सेना को बनाए रखने से रोकते हैं;
> 2. संविधान के इस सिद्धांत के माध्यम से, जिसके अनुसार हाउस ऑफ कॉमन्स द्वारा प्रतिवर्ष पूर्ति की अनुमति दी जाती है और जिसके लिए विधायिका की अनुमति हर वर्ष प्राप्त करना आवश्यक होता है;
> 3. इस नियम के माध्यम से जिसके अनुसार सम्राट को प्रदत्त की गई पूर्ति को उन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिए विनियोजित करना होगा जिनके लिए वह प्रदत्त की गई है; और
> 4. संविधान के इस सिद्धांत के माध्यम से जिसके अनुसार सम्राट के किसी मंत्री को उसके द्वारा मंत्री होने की हैसियत से अथवा किसी मंत्रालय या विभाग द्वारा जिसका वह राजनीतिक प्रमुख हो, किए गए किसी कार्य के लिए या इस मंत्री द्वारा संप्रभु को दिए गए किसी परामर्श के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है।[18]

---

[17] एच.वी. वाइजमैन, पार्लियामेंट एंड दि एक्जीक्यूटिव, 1966, पृष्ठ 16

[18] वही, पृष्ठ 16-17

जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार, सरकार के कार्य पर नियंत्रण रखने और वास्तव में उसे करने में बहुत अन्तर है। उसके अनुसार अत्यधिक विशाल सभा सीधे विधान-निर्माण के कार्य के लिए उतनी ही अक्षम है जितनी वह प्रशासन के कार्य के लिए अक्षम है। कोई प्रतिनिधि-सभा सम्भवत: किसी कार्य को करने में नहीं बल्कि करवाने में और यह निर्धारित करने में सक्षम हो सकती है कि इस कार्य को कौन-कौन से और किस प्रकार के लोगों को सौंपा जाए, तथा कार्य-निष्पादन के लिए राष्ट्रीय अनुमति प्रदान करे या उसे रोक दे। अत:, जे. एस. मिल के मतानुसार किसी प्रतिनिधि-सभा का उचित कार्य है, ''सरकार पर निगरानी और नियंत्रण रखना, इसके कार्यों को प्रचारित करना; उन सभी कार्यों को प्रकट करने और औचित्य को स्पष्ट करने के लिए सरकार को बाध्य करना; जिन्हें कोई भी व्यक्ति संदेहास्पद समझता है; यदि उन्हें निन्दनीय पाया जाए तो उनकी निन्दा करना और यदि सरकार की संरचना करने वाले व्यक्ति अपने विश्वास का दुरुपयोग करते हैं या उसका निर्वहन ऐसे ढंग से करते हैं, जो राष्ट्र की सुविचारित विचारधारा के प्रतिकूल हों, तो उन्हें उनके पद से हटाना।''[19]

दूसरे मत के अनुसार संसद का रूप एक निगमित संस्था का इतना नहीं है, जितना वह एक अखाड़े या मंच का है। इस अखाड़े में सदस्यगण अपनी-अपनी शिकायतें रखते हैं और सदस्यों के समूह दलीय संघर्ष को चलाते हैं। इसमें मंत्रीगण इसलिए आते हैं कि सदस्य उनसे तर्क-वितर्क कर सकें। बड़े और महत्वपूर्ण मुद्दों पर वाद-विवाद किया जाता है ताकि विपक्ष निर्वाचकों के लाभार्थ कोई वैकल्पिक नीति प्रस्तुत कर सके। दूसरे शब्दों में यह दृष्टिकोण संसद को एक अधीनस्थ निकाय की भूमिका प्रदान करता है, भले ही इसके वाद-विवाद को समाचार-पत्रों में प्रमुख स्थान मिले।[20]

परंतु भारतीय-प्रणाली में कार्यपालिका और विधायिका के प्राधिकरणों के बीच वास्तविक संयोजन प्रस्तुत किया गया है। संविधान के अनुसार तथा वास्तविक व्यवहार में भी कार्यपालिका और विधायिका के बीच अत्यधिक

---

[19] एच.वी. वाइजमैन, पार्लियामेंट एंड दि एक्जीक्यूटिव, 1966, पृष्ठ 23-24

[20] ए.एच. बर्क, रिप्रेजेन्टेटिव एंड रेसपॉन्सिबल गवर्नमेंट, 1964, पृष्ठ 166-67

निकट संबंध है तथा आदर्शतः इसमें कोई विरोधाभास या द्विभाजन नहीं है। इन दोनों को शक्ति के प्रतिस्पर्धी केन्द्रों के रूप में नहीं देखा जाता है, बल्कि इन्हें सरकार के कामकाज में अविभाज्य भागीदार या सह-भागीदार के रूप में देखा जाता है। संसद एक बड़ा निकाय है। वह शासन नहीं करती है और वह शासन कर भी नहीं सकती है। मंत्रिपरिषद् संसद की एक ऐसी वृहत् कार्यकारी समिति है जिसे मुख्य निकाय (संसद) की ओर से शासन करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। यह संसद में से ही बनती है, उसका ही एक भाग होती है और लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। कार्यपालिका तथा विधायिका के संबंध को किसी सम्पूर्ण वस्तु और उसके एक भाग के पारस्परिक संबंध और अन्योन्याश्रित संबंध की संज्ञा दी जा सकती है।

कार्यपालिका को संसद के समक्ष विधायी और वित्तीय प्रस्ताव तैयार करने और उन्हें उपस्थित करने तथा अनुमोदित नीतियों को लागू करने का लगभग असीमित अधिकार प्राप्त होता है और इसमें संसद कोई बाधा और रुकावट नहीं बनती है, फिर भी संसद को कार्यपालिका द्वारा उपस्थित किए गए प्रस्तावों पर जानकारी प्राप्त करने, चर्चा करने, जांच करने और उन पर अनुमोदन की मुहर लगाने की असीमित शक्ति प्राप्त होती है। कार्यपालिका (यानी राजनीतिक कार्यपालिका—मंत्रिपरिषद्) उत्तरदायी बनी रहती है और प्रशासन संसद के प्रति जवाबदेह बना रहता है। कार्यपालिका पर राजनीतिक और वित्तीय नियंत्रण रखना तथा प्रशासन पर संसद की निगरानी को सुनिश्चित करना संसद का कार्य है। कार्यपालिका का उत्तरदायित्व और प्रशासनिक जवाबदेही दो भिन्न प्रकार्यात्मक अवधारणाएं हैं।

प्रत्येक सरकारी विभाग का प्रमुख एक मंत्री होता है, संसद उस मंत्री के माध्यम से उस विभाग पर अपना नियंत्रण रखती है। किसी मंत्रालय का वस्तुतः अपना स्वायत्तशासी अस्तित्व होता है और यह अपना कार्य सांविधिक उपबंधों, नियमों और विनियमों के अनुसरण में अथवा लम्बे समय से चली आ रही प्रथा के अनुसार करता है। मंत्रालय पर संसदीय नियंत्रण इस बात पर आधारित होता है कि मंत्रालय के किसी भी कार्य पर कोई सदस्य आपत्ति कर सकता है तथा उस मंत्रालय के प्रशासन के लिए जिम्मेदार मंत्री को

अपने अधिकारियों के कार्यों के संबंध में सफाई देनी होती है। यह एक सुस्थापित संवैधानिक सिद्धांत है कि कोई मंत्री अपने मंत्रालय के सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है और यदि संसद किसी प्रशासनिक कृत्य का निरनुमोदन करती है, तो उसे इसका दोष अपने ऊपर लेना होता है। हां, ऐसा हो सकता है कि कोई सिविल अधिकारी जान-बूझकर या अविवेकपूर्ण ढंग से अपने मंत्री की नीति के बाहर या उस नीति के विपरीत जाकर कार्य करे। ऐसा करके वह मंत्री को उसे संरक्षण देने की जिम्मेदारी से मुक्त कर देता है परन्तु संसद के प्रति मंत्री का संवैधानिक उत्तरदायित्व बना रहता है और उसे संसद को इस बात की तसल्ली करानी पड़ती है कि वह मामले पर पर्याप्त रूप से कार्यवाही कर रहा है।[21]

प्रशासनिक उत्तरदायित्व का अर्थ है—प्रशासन का संसद के प्रति उत्तरदायित्व। संसद दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करती है और वह प्रशासन पर नियंत्रण भी नहीं रखती है। इसके प्रति जो उत्तरदायित्व है, वह तकनीकी है और अप्रत्यक्ष है अर्थात् मंत्रियों के माध्यम से है और यह कार्योत्तर है अर्थात् कार्य के हो जाने के पश्चात् होता है। यह कार्यवाही के समाप्त हो जाने के पश्चात् होता है। साथ ही यह विशिष्ट आधारों पर आधारित होता है। भारतीय व्यवस्था के अन्तर्गत नीति के निर्धारित हो जाने के बाद कानून पारित होता है अथवा धन की स्वीकृति दी जाती है, जिसके बाद उसके निष्पादन तथा कार्यान्वयन का काम प्रशासन को करना होता है। संसद स्वयं कार्यान्वयन नहीं कर सकती और मंत्री भी स्वयं कार्यान्वयन नहीं कर सकते हैं। अतः कार्यान्वयन की प्रक्रिया में यदि कोई गलती हो जाती है तो स्पष्टीकरण मंत्रियों को नहीं, बल्कि अधिकारियों को देना पड़ता है।[22]

संसदीय लोकतंत्र में संसद जनता की इच्छाओं का मूर्त रूप होती है। अतः आवश्यक है कि वह इस बात का पर्यवेक्षण करने में समर्थ हो कि सरकारी नीति का कार्यान्वयन किस तरीके से किया जा रहा है ताकि यह

---

[21] एम.एन. कौल एंड एस.एल. शकधर, प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर ऑफ पार्लियामेंट, 7वां संस्करण, 2016, पृष्ठ 1204

[22] सुभाष सी. कश्यप, दि पार्लियामेंट एंड दि एक्जीक्यूटिव इन इंडिया (जर्नल ऑफ सोसायटी ऑफ क्लार्क्स-एट-दि-टेबल, खंड 49) 1981, में प्रकाशित, पृष्ठ 70

सुनिश्चित हो सके कि उसका काम सामाजिक-आर्थिक उन्नति, कुशल प्रशासन तथा जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप है। संक्षेप में यही प्रशासन पर संसद की निगरानी का मुख्य प्रयोजन है। संसद को प्रशासन के व्यवहार पर निगरानी रखनी पड़ती है। वह किसी कार्य के हो जाने के पश्चात् इस बात की जांच-पड़ताल तथा समीक्षा कर सकती है कि क्या प्रशासन ने स्वीकृत नीतियों के अधीन रहते हुए अपने दायित्वों के अनुरूप कार्य किया है और क्या इसने प्रदत्त शक्तियों का उपयोग उन प्रयोजनों के लिए किया है जिनके लिए वे अभिप्रेत थीं और क्या खर्च किया गया धन संसद द्वारा दी गई स्वीकृति के अनुसार था। इससे इस बात का सुनिश्चय होता है कि कार्य करते समय अधिकारी इस बात से अवगत रहे कि जो कुछ वे करते हैं या करने में असफल रहते हैं उसके लिए उसकी अन्ततः संसदीय संवीक्षा हो सकती है तथा वे उसके लिए उत्तरदायी हैं। किंतु संवीक्षा सार्थक हो तथा प्रशासन से जवाब तलब किया जा सके, इसके लिए संसद को तकनीकी संसाधनों तथा सूचना संबंधी तामझाम से लैस होना चाहिए।[23]

संसदीय समितियों की व्यवस्था, प्रश्न, ध्यानाकर्षण सूचनाएं, आधे घण्टे की चर्चा, आदि जैसे विभिन्न प्रक्रिया संबंधी उपाय ऐसे हैं जो प्रशासन की कार्यवाही पर संसदीय निगरानी रखने के सशक्त उपकरण का काम भी करते हैं। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव, बजट मांगों तथा सरकारी नीति के विशिष्ट पहलुओं या स्थितियों पर चर्चा के समय प्रशासन की समीक्षा के महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं। इसके अलावा, अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों संबंधी प्रस्तावों, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों तथा अन्य मूल प्रस्तावों के द्वारा भी विशिष्ट मामलों पर चर्चा की जा सकती है। सदस्य अपनी बात को कहने तथा देश के लिए क्या हितकर है तथा विद्यमान नीति में क्या सुधार लाना अपेक्षित है, इसकी अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्र होते हैं। सरकार संसद के अभिमत के प्रति संवेदनशील होती है, अधिकतर मामलों में उसे इसका अंदाजा पहले से हो सकता है। कुछ मामलों में वह इसके समक्ष झुक जाती है और कुछ अन्य मामलों में ऐसा हो सकता है कि वह महसूस करे कि

[23] एस.एल. शकधर, ग्लिम्पसेज़ ऑफ दि वर्किंग ऑफ पार्लियामेंट, 1977, पृष्ठ 180-84

वह अपनी प्रतिबद्धताओं, कर्त्तव्यों तथा राजनीतिक दर्शन के अनुरूप कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। इस पर भी चर्चाओं के दौरान सदस्यों को इस बात की पूरी छूट होती है कि वे प्रशासन के कार्य-निष्पादन की आलोचना करें तथा बतायें कि किसी विशेष-उपाय को किस तरह लागू किया जाये या क्रियान्वित किया जाये। ये चर्चाएं महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि इनसे संसदीय मनोदशा का संकेत मिलता है और इनसे प्रशासनिक तंत्र पर जनता के विचारों का प्रभाव पड़ता है जिसके अभाव में प्रशासन जनता की भावनाओं और अनुभूतियों से निष्प्रभावित रह सकता है। संसदीय वाद-विवाद प्रशासन को उनके कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का स्मरण भी कराता है। संसद में होने वाला वाद-विवाद प्रशासन की विचारधारा तथा कार्यवाही को कई तरह से प्रभावित करता है और वह सूक्ष्म प्रभाव, जिसे किसी ठोस पैमाने से मापा नहीं जा सकता, प्रशासन के सभी स्तरों-उच्च स्तर तथा निम्न स्तर-तक पहुंच जाता है। अतः इन संसदीय चर्चाओं में प्रशासनिक उत्तरदायित्व की बात की जाती है और संसद द्वारा नीतियों के स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् प्रशासन को उन्हें सर्वश्रेष्ठ ढंग से क्रियान्वित करने की पूरी स्वतंत्रता होती है, किंतु फिर भी सभा में व्यक्त किये गए विभिन्न दृष्टिकोणों का ध्यान उन्हें बना रहता है और उनसे वे मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।[24]

संसद के प्रति कार्यपालिका या मंत्री का उत्तरदायित्व, जिसे प्रायः कार्यपालिका या सरकार पर संसदीय नियंत्रण कहा जाता है, निम्नलिखित बातों पर आधारित होता है:-

(i) मंत्रिपरिषद् की लोक सभा के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी का संवैधानिक उपबंध;[25] और

(ii) बजट पर संसद का नियंत्रण।[26]

दोनों मामलों में कार्यपालिका पर संसद के नियंत्रण का स्वरूप राजनीतिक होता है। कार्यपालिका की जवाबदेही प्रत्यक्ष, निरंतर, समवर्ती तथा दिन-प्रतिदिन

[24] एस.एल. शकधर, ग्लिम्पसेज़ ऑफ दि वर्किंग ऑफ पार्लियामेंट, पृष्ठ 196-97

[25] अनुच्छेद 75(3)

[26] अनुच्छेद 114-16 तथा 265

की होती है। जब संसद की बैठक चल रही हो तब सरकार का बने रहना क्षण-प्रति-क्षण इस बात पर निर्भर करता है कि उस पर लोक सभा का विश्वास बना रहे। सभा किसी भी समय बहुमत से सरकार को गिराने का निर्णय कर सकती है, अर्थात् यदि सत्तारूढ़ दल सभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन खो देता है, तो उसकी सरकार गिर जाती है। इसके लिए किसी प्रकार के आधार, तर्क, प्रमाण या न्यायसंगति का होना आवश्यक नहीं है।[27] जब सभा स्पष्ट रूप से बता देती है कि वह विद्यमान सरकार का समर्थन नहीं करती है तो सरकार को त्यागपत्र देना होगा।[28] सरकार के प्रति संसद के अविश्वास को लोक सभा द्वारा निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

(क) मंत्रिपरिषद् के प्रति अविश्वास का मूल प्रस्ताव पारित करके;[29]

(ख) नीति के किसी प्रमुख मुद्दे पर सरकार को पराजित करके;

(ग) स्थगन प्रस्ताव को पारित करके;[30] और

(घ) पूर्तियों को पारित करने से इन्कार करके या किसी वित्तीय मामले पर सरकार को पराजित करके।

कार्यपालिका को बजट तैयार करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान में यह उपबंध किया गया है कि अनुमानित आय तथा व्यय का एक वार्षिक विवरण संसद के समक्ष पेश किया जाएगा। कार्यपालिका को अपने व्यय के स्तर का सुझाव देने और यह बताने का पूरा हक है कि विभिन्न धनराशियां किस-किस प्रयोजन के लिए अपेक्षित हैं।

उसे यह सुझाव देने की भी पूरी छूट है कि इस व्यय को पूरा करने के लिए राजस्व किस प्रकार जुटाया जाना चाहिए। इस प्रकार, वित्तीय मामलों में सारी पहल सरकार को करनी होती है। फिर भी, लोक वित्त पर संसदीय नियंत्रण—कर लगाने अथवा उनमें परिवर्तन करने के और पूर्तियों तथा अनुदानों

[27] पार्लियामेंट्स ऑफ दि वर्ल्ड, आई.पी.यू., 1976, पृष्ठ 801-2 और 825-27

[28] एम.एन. कौल एंड एस.एल. शकधर, प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर ऑफ पार्लियामेंट, 7वां संस्करण, 2016, पृष्ठ 768

[29] लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम, नियम 198, 15वां संस्करण, पृष्ठ 73

[30] वही, नियम 56, पृष्ठ 29

पर स्वीकृति देने की शक्ति–कार्यपालिका द्वारा मनमानी शक्तियां प्राप्त कर लिए जाने के विरुद्ध एक अत्यधिक महत्वपूर्ण उपाय है। कानून द्वारा विशिष्ट संसदीय प्राधिकार प्राप्त किये बिना कानूनी रूप से न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न राजकोष से कोई व्यय किया जाएगा।[31]

हमारे जैसी संसदीय शासन प्रणाली में संसद के तीन मूल कार्य होते हैं: कानून बनाना, लोगों का प्रतिनिधित्व करना और उनकी समस्याओं को उठाना तथा कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करना। कार्यपालिका का कार्य शासन करना, संसद द्वारा बनाई गई विधियों को कार्यान्वित करना है। लोक व्यवस्था कायम रखने, आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति में सहायता करने तथा सुदृढ़ और कुशल प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए किसी भी देश को कानून की आवश्यकता होती है। कार्यपालिका अधिकांशत: विधान का प्रस्ताव करती है और अपने विधायी बहुमत के माध्यम से इसका पारण सुनिश्चित करती है। यथापारित विधेयक लोक प्रशासन के लिए विधायी कार्यढांचे का उपबंध करते हैं। विधायी उपायों के माध्यम से वित्त पर नियंत्रण करना, कर लगाने अथवा उनमें संशोधन करने की शक्ति, पूर्ति और अनुदानों पर मतदान करना तथा जनता की शिकायतों को प्रकाश में लाना संसद के अनन्य विशेषाधिकार हैं। इन्हीं शक्तियों के माध्यम से संसद के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही प्रवर्तित की जाती है।

भारत के संविधान के अंतर्गत, कार्यपालिका तथा संसद का संबंध पारस्परिक आस्था तथा विश्वास पर आधारित है। संसद को जानकारी प्राप्त करने और कार्य पूरा हो जाने के बाद उसकी आलोचना करने के संबंध में प्राय: असीमित अधिकार प्राप्त हैं और इसी तरह कार्यपालिका को भी प्रस्ताव उपस्थित करने तथा नीतियां तैयार करने और स्वीकृत नीतियों को निर्बाध और बेरोकटोक लागू करने के मामले में असीमित अधिकार प्राप्त हैं। संक्षेप में संसद को कार्यपालिका का सम्मान करना है तथा कार्यपालिका को हर समय संसदीय प्रभाव अनुभव करना है। जब तक यह संतुलन मौजूद है, तब तक हर तरह से यह विश्वास किया जा सकता है कि देश की सरकार जनता की

[31] अनुच्छेद 114–16 तथा 265

इच्छाओं के अनुरूप चलेगी। हमारी इस शासन-प्रणाली की सफलता वस्तुतः इसी नाजुक संतुलन में है।

तथापि, कार्यपालिका पर संसद के प्रभाव और नियंत्रण में वृद्धि करने की कुछ गुंजाइश है। एक प्रस्ताव जिस पर वाद-विवाद किया गया है और चर्चा की गई है। यह है कि कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण को सुदृढ़ करने के लिए मौजूदा समितियों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जाए। यह बात भली-भांति स्वीकार की जाती है कि प्रशासन पर निगरानी रखने, सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों की जांच करने, सरकारी विभागों के कार्यों तथा कार्य-निष्पादन की बाबत जानकारी एकत्रित करने, उस पर विचार-विमर्श करने और रिपोर्ट देने के लिए ये संसदीय समितियां सदस्यों को उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती है।

समिति प्रणाली को मजबूत बनाने के विचार से संसद के दोनों सदनों ने 29 मार्च, 1993 को सत्रह विभाग-संबंधित स्थायी समितियों के गठन को सर्वसम्मति से मंजूरी प्रदान की थी। इन नई समितियों ने 1989 में बनी तीन विषय-आधारित समितियों की जगह ली और सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों को जांच के उद्देश्य से अपनी परिधि में सम्मिलित कर लिया। जुलाई, 2004 में, इन समितियों की संख्या बढ़ाकर चौबीस कर दी गई ताकि समिति प्रणाली को सुव्यवस्थित किया जा सके (उपाबंध)। इन चौबीस समितियों में से आठ समितियां राज्य सभा के सभापति के नियंत्रण और निदेश के अधीन कार्य करती हैं। इन समितियों को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं:

(क) संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदान मांगों पर विचार करना और उन पर प्रतिवेदन देना। इस प्रतिवेदन में किसी कटौती प्रस्ताव का सुझाव नहीं होगा;

(ख) सभापति या लोक सभा अध्यक्ष द्वारा, यथास्थिति, समिति को सौंपे गये संबंधित मंत्रालयों/विभागों से संबंधित विधेयकों की जांच करना और उस पर प्रतिवेदन देना;

(ग) मंत्रालयों/विभागों के वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार करना और उन पर प्रतिवेदन देना; और

(घ) सभाओं को प्रस्तुत राष्ट्रीय बुनियादी दीर्घावधि नीतिगत दस्तावेजों पर विचार करना। यदि वे सभापति या लोक सभा अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा समिति को सौंपे गये हों और उन पर प्रतिवेदन देना।

ये स्थायी समितियां संबंधित मंत्रालयों/विभागों के रोजमर्रा के प्रशासन संबंधी मामलों पर विचार नहीं करेंगी।

31 मार्च, 1993 को विभाग-संबंधित स्थायी समिति प्रणाली का शुभारंभ करते हुए भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति तथा राज्य सभा के सभापति श्री के.आर. नारायणन ने इन समितियों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि:

> इन समितियों में उपायों पर विस्तृत विचार करके संसद के प्रति सरकार की जवाबदेही को सुनिश्चित किया जाएगा। इसका उद्देश्य प्रशासन को कमजोर करना या इसकी आलोचना करना नहीं है बल्कि इसे और अधिक सार्थक संसदीय सहायता के साथ मजबूत बनाना है।[32]

[32] योगेन्द्र नारायण, भारतीय संसद - एक परिचय, 2007, पृष्ठ 35-36

विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियां

राज्य सभा

तीसरी अनुसूची

(**देखिए** नियम 268)

विभिन्न विभाग-संबंधित संसदीय स्थायी समितियों को मंत्रालयों/विभागों का आवंटन

क्रम सं.	समिति का नाम	मंत्रालय/विभाग
	भाग-I	
1.	वाणिज्य संबंधी समिति	वाणिज्य और उद्योग
2.	गृह कार्य संबंधी समिति	(1) गृह कार्य (2) पूर्वोत्तर क्षेत्र का विकास
3.	मानव संसाधन विकास संबंधी समिति	(1) मानव संसाधन विकास (2) युवक कार्यक्रम और खेल (3) महिला एवं बाल विकास
4.	उद्योग संबंधी समिति	(1) भारी उद्योग और लोक उद्यम (2) सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यम
5.	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति	(1) विज्ञान और प्रौद्योगिकी (2) अंतरिक्ष (3) पृथ्वी विज्ञान (4) परमाणु ऊर्जा (5) पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन

क्रम सं.	समिति का नाम	मंत्रालय/विभाग
6.	परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति	(1) नागर विमानन (2) सड़क परिवहन और राजमार्ग (3) पोत परिवहन (4) संस्कृति (5) पर्यटन
7.	स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति	(1) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण (2) आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी (आयुष)
8.	कार्मिक, लोक शिकायत, और न्याय संबंधी समिति	(1) विधि और न्याय (2) कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन
	भाग-II	
9.	कृषि संबंधी समिति	(1) कृषि और किसान कल्याण (2) खाद्य प्रसंस्करण उद्योग
10.	सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी समिति	(1) संचार और सूचना प्रौद्योगिकी (2) सूचना और प्रसारण
11.	रक्षा संबंधी समिति	रक्षा
12.	ऊर्जा संबंधी समिति	(1) नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा (2) विद्युत
13.	विदेश कार्य संबंधी समिति	विदेश
14.	वित्त संबंधी समिति	(1) वित्त (2) कॉरपोरेट कार्य (3) योजना (4) सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन
15.	खाद्य, नागरिक आपूर्ति और सार्वजनिक वितरण संबंधी समिति	उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण

क्रम सं.	समिति का नाम	मंत्रालय/विभाग
16.	श्रम और कल्याण संबंधी समिति	(1) श्रम और रोजगार (2) वस्त्र (3) कौशल विकास और उद्यमिता
17.	पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस संबंधी समिति	पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस
18.	रेल संबंधी समिति	रेल
19.	शहरी विकास संबंधी समिति	(1) शहरी विकास (2) आवास और शहरी गरीबी उपशमन
20.	जल संसाधन संबंधी समिति	जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण
21.	रसायन और उर्वरक संबंधी समिति	रसायन और उर्वरक
22.	ग्रामीण विकास संबंधी समिति	(1) ग्रामीण विकास (2) पेयजल और स्वच्छता (3) पंचायती राज
23.	कोयला और इस्पात संबंधी समिति	(1) कोयला (2) खान (3) इस्पात
24.	सामाजिक न्याय और अधिकारिता संबंधी समिति	(1) सामाजिक न्याय और अधिकारिता (2) जनजाति कार्य (3) अल्पसंख्यक कार्य

चुनिंदा संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. संविधान सभा वाद-विवाद, खंड VII, 1948-1949, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली
2. राव, बी. शिवा: फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन, नई दिल्ली, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, 1968
3. भारत का संविधान, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली
4. ऑल इंडिया रिपोर्टर (ए.आई.आर.), सुप्रीम कोर्ट सेक्शन, नागपुर, 1951, 1955 और 1973
5. ऑल इंडिया रिपोर्टर (ए.आई.आर.), केरल हाई कोर्ट सेक्शन, 1958
6. वाइजमैन, एच.वी.: पार्लियामेंट एण्ड दि एक्जीक्यूटिव, राउटलेज एण्ड केगन पॉल, लंदन, 1965
7. बर्क, ए.एच.: रिप्रेजेंटेटिव एंड रेस्पॉन्सिबल गवर्नमेंट, एलेन एंड अनविन, 1965
8. कश्यप, सुभाष सी.: द पार्लियामेंट एंड दि एक्जीक्यूटिव इन इंडिया, जर्नल ऑफ सोसायटी ऑफ क्लर्क्स-एट-द-टेबल में प्रकाशित, खंड XLIX, 1981, पृष्ठ 70
9. शकधर, एस.एल.: ग्लिम्पसेज़ ऑफ द वर्किंग ऑफ पार्लियामेंट, मेट्रोपोलिटन, नई दिल्ली, 1977
10. पार्लियामेंट्स ऑफ द वर्ल्ड—ए रेफरेंस कम्पेंडियम, इंटर-पार्लियामेंटरी यूनियन, 1976
11. कौल, एम.एन. और शकधर, एस.एल.: संसद की परिपाटी और प्रक्रिया, सातवां संस्करण, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2016

12. लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम, पन्द्रहवां संस्करण, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2014

13. नारायण, योगेन्द्रः भारतीय संसद–एक परिचय, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2007